Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. XV, Issue No. 1, April-2018, ISSN 2230-7540

चोल कला की धार्मिक और अन्य प्रतिमाओं में नारी

Vishal Pandey[1]* Dr. Arun Kumar Singh[2]

[1] Research Scholar, Shri Venkateshwara University, Gajraula, Amroha

[2] M.A. PhD (History)

सार – *भारतीय मूर्तिकारों ने पकी मिट्टी की मूर्तियाँ बनाने और पत्थर तराशने-उकेरने में ताजितनी कुशलता प्राप्त कर रखी थी, उतनी ही प्रवीणता उन्होंने कांसे को पिघलाने, ढालने और उससे मूर्तियाँ आदि बनाने के कार्य में भी प्राप्त कर ली थी। चोल भी भारत के महान निर्माताओं एवं कलाविदों में गिने जाते हैं। इनके राजत्व में निर्मित प्रासाद तथा मन्दिर इनकी कलात्मक उपलब्धि, साम्राज्य विस्तार एवं ऐश्व र्य के प्रतीक हैं तो मंदिरों में विद्यमान मूर्तिसज्जा एवं धातु मूतियाँ इनकी मौलिकता, कलात्मकता एवं सौंदर्यबोध की प्रतीक हैं। मन्दिर निर्माण कला के क्षेत्र में चोलों ने पल्लव परम्पराओं को विरासत के रूप में प्राप्त किया था, अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा एवं अभिरूचि के अनुसार इन्होंने इसे अत्यधिक रचनात्मक उत्कृष्टता तथा भव्यता प्रदान की। 10वीं से 12वीं सदी तक चोल, दक्षिण भारत में सर्वाधिक शक्तिशाली एवं समृद्धिशाली शासक हुए। उनके सामरिक अभियान उत्तर भारत में गंगा नदी तक, दक्षिण-पूर्वी एशिया में सुमात्रा, जावा, श्रीविजय आदि राज्यों तक हुए थे। उन्होंने अपने वैभव के अनुकूल दक्षिण भारत में अनेक मन्दिरों का निर्माण कराकर द्राविड़-कला शैली को विकास के चरमशिखर पर पहुँचा दिया।*

कुंजीशब्द – *चोल कला, नारी, मूर्तियाँ, द्राविड़-कला, दक्षिण भारत*

----------X----------

प्रस्तावना

प्रारम्भिक चोल स्थापत्य कला-शैली का विकास 8वीं शती से 10वीं शती के मध्यवर्ती काल में हुआ। इसमें मूर्तिकला का विकास तथा उसका उत्तरोत्तर परिष्कार मुख्य रूप से तंजोर केन्द्र के प्रारम्भिक चोल-शासकों के शासनकाल में किया गया। प्रारम्भिक चोल शासकों द्वारा निर्मित कलात्मक निर्माणों में प्रारम्भिक चोल स्थापत्य कला-शैली द्वारा प्रस्तुत कला-सज्जा की छटा दर्शनीय है। चोल-स्थापत्य-कलाकृतियाँ तंजोर के सन्निकट वरिष्ठेश्वर मन्दिर, कुंभकोनम के नागेश्वर मन्दिर, सिरिनिवासनल्लूर के कोरंगनाथ मन्दिर तथा पुड्डकोट्टई क्षेत्र में प्राप्त हुई है। उक्त मन्दिरों के देव-कोष्ठकों, स्तम्भों तथा मण्डपभित्तियों पर उत्कीर्णित मूर्तियों के अतिरिक्त वृक्षों के नीच आसीन शिव-दक्षिणामूर्ति, ब्रहा तथा चंडेश मूर्तियाँ बड़ी मनोहर हैं। कुंभकोनम के नागेश्वर मन्दिर में निर्मित नारी-मूर्तियों में शारीरिक सौन्दर्य को उभारने का अदभुद् संयोजन मिलता है। छरहरी नारी-काया में कटि का समानुपातिक विन्यास तथा नाभि-प्रदेश पर त्रिवली का अंकन नयनाभिराम है। ध्यातव्य है कि इस कोटि की अधिकांश मूर्तियों का अंकन चोल नरेश राजराज प्रथम तथा राजेन्द्र चोल के शासनकाल में किया गया। प्रारम्भिक चोल स्थापत्य कला, जिसका अधिकांश निर्माण कावेरी नदी के तटवर्ती क्षेत्रों में किया गया, परवर्ती पल्लव-चोल-स्थापत्य कला शैली से अनुप्रणीत है। उपर्युक्त मन्दिरों में प्राप्त स्थापत्य के अतिरिक्त तंजोर से लगभग दस मील दूर स्थित तिरुपड़नममहादेव मन्दिर की ग्रीवा भाग पर अनेक मूर्तियाँ उकेरी गई है।

इनमें आलिंगनचन्द्रशेखर, वीणाधर, अर्धनारीश्वर तथा चन्द्रशेखर की मूर्तियाँ चारों दिशाओं में अवलोक्य हैं। इनके अतिरिक्त मन्दिर के विभिन्न भागों में पार्वती सहित शिव, वराह दक्षिणामूर्ति, ब्रहमा, गंगाधर तथा लिंगोद्भव आदि मूर्तियाँ भी उल्लेखनीय हैं। इस काल की मूर्तियों में प्रायः भागवत, देवी भागवत, रामायण तथा शिवपुराण आदि में आख्यात अनेक लीलाओं का अंकन महत्वपूर्ण है। उपर्युक्त कलाशैली में निर्मित मूर्तियाँ अपेक्षाकृत लम्बी, काया पतली, शारीरिक अवयवों तथा मुद्राओं में सौम्यता दृष्टिगोचर होती है। इन मूर्तियों के वस्त्राभूषण में मर्यादा, कोमलता तथा भाव-संप्रेषण मोहक लगता है।

देव प्रतिमाये - मानवीय मूर्तियों की अपेक्षा चोलों की देव प्रतिमायें एवं पौराणिक दृश्य अधिक सशक्त सजीव तथा आकर्षक हैं। चोल प्रतिमायें दो तरह की हैं -प्रस्तर प्रतिमायें

www.ignited.in

तथा धातु प्रतिमायें। चोल प्रशासक अधिकांशतः शैव थे, फलतः शैव प्रस्तर प्रतिमाओं (मूर्तियों) का मर्तन ज्यादा किया गया और इन्ही की प्रधानता रही। अंकन मन्दिरों में किया गया तथा स्वतन्त्र रूप में भी। वहदीश्वर के देवालय में शिव के विविध रूपों में यथा-विष्णु, अनुग्रह, भिक्षाटन, वृषवाहन, त्रिपुरान्तक आदि का अंकन है। राजेन्द्र प्रथम के समय के निर्मित गंगैकोडचोलपुरम् के बृहदीश्वर मन्दिर में कई मूर्तियां मिली हैं। इनमें नटराज, जिसमें शिव के ताण्डव नृत्य को दर्शाया गया है, हरिहर तथा उत्तरी दीवार पर बनी चण्डेशानुग्रह मूर्तियां अति आकर्षक हैं। अपनी अर्धांगिनी पार्वती के साथ शिव अपने भक्त चण्डेश पर जिस प्रकार प्रसन्न है, उसे कलाकार ने बड़ी सफलता से प्रदर्शित किया है। प्रस्तर के साथ-साथ चोल कलाकारों ने धातु की सहायता से भी देवी-देवताओं की अनेक मूर्तियाँ बनायी। ये मूर्तियां अपनी भव्यता, तकनीक एवं निर्माण शैली के कारण अत्यन्त श्लाध्य हैं। प्रस्तर मूर्तियों से भी अधिक चोलकला में धातु अथवा कांस्य-मूर्ति-निर्माण कला सजी एवं संवरी थी। धातु-मूर्तियां चोलकला के सर्वोत्कृष्ट पक्ष को प्रकाशित करती हैं। इन कांस्य प्रतिमाओं में अव्वल दर्जे की नटराज की मूर्तियां हैं। नटराज शिव की एक महाउपाधि है। शिव नाट्यकला तथा संगीत कला के प्रथम प्रतिष्ठापक हैं। शिव की नट मूर्तियों में सृष्टि की उत्पत्ति, रक्षा एवं संहार सभी निगदित है। ये मूर्तियां न केवल दुनिया भर के सभी संग्रहालयों की शोभा बढ़ा रही हैं. प्रत्यत इनकी दक्षिण के मन्दिरों में आज भी पूजा की जाती हैं

चोलों के अधीन वास्तुकला

चोल वास्तुकला की एक विशेष विशेषता कलात्मक परंपरा की शुद्धता है। 11 वीं शताब्दी की शुरुआत में, तंजावुर में दो शानदार मंदिर और तिरुचिरापल्ली जिले में गंगाईकोंडा चोलापुरम में चोल कला और वास्तुकला का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन होता है। पल्लवों द्वारा शुरू की गई द्रविड़ियन विशेषता ने चोलों के तहत शास्त्रीय रूपों और विशेषताओं का अधिग्रहण किया जैसे कि गोपुरम, मंडपम और विमन। प्रारंभ में, गोपुरम सुविधाएँ अधिक प्रमुख थीं लेकिन बाद के चरणों में, विमन ने सबसे आगे ले लिया। चोल मंदिरों के गर्भगृह आकार में वृत्ताकार और वर्गाकार दोनों थे और भीतर के गर्भगृह की दीवारें सुशोभित थीं। गर्भगृह के ऊपरी ओर विशेष आकार के गुंबद हैं जो गुंबद के शीर्ष पर गुंबद के आकार के शिखर और कलश के साथ बनाए गए हैं। बृहदेश्वर मंदिर गर्भगृह के चारों ओर के मार्ग की दीवारें अति सुंदर चित्रों के पैनलों से आच्छादित हैं, हालांकि समय के साथ बेहोश अभिव्यक्ति दिखाती है। इस मंदिर की भीतरी दीवारों पर उकेरे गए शिव के 108 नृत्य क्षेत्र में चोलों द्वारा प्राप्त ऊँचाइयों को प्रमाणित करते हैं। कला और वास्तुकला का। यह मंदिर चोल शिल्पकारों की बेहतरीन रचना के रूप में जाना जाता है।

चोल कला में नारी

चोल शासनकाल में स्थापत्य कला के साथ मूर्तिकला के क्षेत्र में अत्यधिक प्रगति हुई। चोल कालीन कांस्य मूर्तिकला विशेष रूप से संसार में प्रसिद्ध है। ये कांस्य मूर्तियां बड़ी मात्रा में दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में प्राप्त हुई है, क्योंकि ये क्षेत्र लम्बे समय तक चोलों के प्रभाव में रहे है। चोलों के मंदिर निर्माण की शुरूआत तंजावूर के दुर्गा मंदिर से मानी जाती है।

बृहदेश्वर या राजराजेश्वर (तंजावूर) प्रसिद्ध एवं विशाल मंदिर का निर्माण राजराज-प्रथम (985-1014 ई.) ने अपने शासन काल के अन्तिम दशक में करवाया था। राजराज प्रथम जैसे महान विजेता, शिव भक्त तथा उत्कृष्ट कला प्रेमी ने तीव्र धार्मिक प्रेरणा के प्रभाव में इस भव्य मंदिर का निर्माण करवाया जो तत्कालीन सबसे महत्त्वपूर्ण योजना रही है। यह दक्षिण भारतीय स्थापत्य कला में एक मील का पत्थर सिद्ध हुई है। स्थापत्य ही नहीं प्रतिमा अलंकरण की दृष्टि से भी भगवान् शिव का यह मंदिर बहुत बेजोड़ है।

गंगइकोण्डचोलपुरम् मंदिर का निर्माण राजराज प्रथम के पुत्र राजेन्द्र प्रथम (1018-33 ई.) ने करवाया था। यह स्थान तंजावूर से 61 किलोमीटर से 35 किलोमीटर दूर है। गंगई कोण्डचोलपुरम् को राजेन्द्र चोल ने बसाया था तथा कुछ समय के लिए यह उनकी राजधानी भी रही थी। मंदिर का मूर्ति शिल्प भी उसकी वास्तुगत विशेषताओं जितना ही महत्त्वपूर्ण है। अधिकांश मूर्तियां एक आकृति वाली तथा अलिंदों में सुसज्जित है।

चोल काल में केवल ब्राह्मण धर्म की मूर्तियों का अंकन किया गया है। इसी कारण चोल मंदिरों पर मुख्यतः देवियों के विभिन्न स्वरूपों का अंकन हुआ है जिनके प्रमुख उदाहरण तंजौर और गंगैकोण्डचोलपुरम् के बृहदीश्वर मन्दिर, तंजौर के कुम्भकोणम् स्थित नागेश्वर मन्दिर, चिदम्बरम् के नटराज मंदिर एवं दारासुरम् के ऐरावतेश्वर मंदिर तथा अन्य कई शिव मन्दिरों में देखे जा सकते हैं।

प्रारम्भिक चोल शैली की मूर्तियों में आकृतियों को अत्यन्त आकर्षक और मृदुल रूप में दर्शाया गया है। हल्के शरीर-रचनावली मूर्तियों में शरीर के विभिन्न रूपों के निर्माण और मुद्राओं की अभिव्यक्ति में सौम्यता दिखायी देती है। प्रारम्भिक मूर्तियां पतली, हल्की तथा शरीर-रचना की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर बनी है। चोल मूर्तियों में आभूषणों और वस्त्रों का अत्यधिक मर्यादापूर्ण और सुन्दर रूप का वर्णन किया गया है। वस्त्र पूरी तरह शरीर से चिपके, हल्के और कभी-कभी भारी

अलंकरणों और चुन्नटों वाले दर्शाये गये है। मूर्तियां कभी भी वस्त्राभूषणों से बोझिल नहीं दिखाई गई है।

कुम्भकोणम् के नागेश्वर स्वामी मंदिर की प्रारम्भिक मूर्तियों की पतली शरीर-रचना, किलनूर के शिव मंदिर की द्वारपाल, और तंजौर के उग्र महाकाली मंदिर से प्राप्त चर्तुभुज निशुम्भसूदिनी की मूर्ति (940-70 ई.) एवं पुडुकोट्टई के विभिन्न क्षेत्रों से प्राप्त 10वीं शती ई. की प्रारम्भिक चोल मूर्तियां कला की दृष्टि से उल्लेखनीय है।

धार्मिक मूर्तियां:

चोल समय की धार्मिक मूर्तियों में महिषासुरमर्दिनी, दुर्गा, सरस्वती, उमा, पार्वती, निशुम्भसुदिनी, सीता, काली और भोगेश्वरी की मूर्तियों का अंकन किया गया है। इस काल में पत्थर की मूर्तियों के साथ कांस्य की मूर्तियां भी काफी मात्रा में प्राप्त हुई है।

महिषासुरमर्दिनीः

महिषासुरमर्दिनी के प्रतिमा-लक्षण पुराणों, शिल्प एवं वास्तु शास्त्रों में उपलब्ध है, जहाँ उनकी चतुर्भुजी, अष्टभुजी, दसभुजी, षोड्शभुजी, बीसभुजी मूर्तियों के वर्णन है। देवी की दस भुजी मूर्ति का विवरण मत्स्यपुराण, अग्निपुराण, अपराजितपृच्छा, रूपमण्डन एवं देवता मूर्ति प्रकरण में उपलब्ध है। मत्स्यपुराण में महिषासुरमर्दिनीश् की दसभुजी मूर्ति को श्कात्यायनीश् कहा गया है।

गंगैकोण्डचोलपुरम् से प्राप्त महिषासुरमर्दिनी की मूर्ति में असुर और देवी के युद्ध का अंकन किया गया है, असुर मानव रूप में है। यहां पर देवी को भैंसे रूपी असुर की पूँछ को उठाये हुए दर्शाया गया है। जबकि असुर को भैंसे से मानव रूप में प्रतीत किया गया है जिसमें असुर का सिर भैंसे का है और शरीर मानव का है।

गंगैईकोण्डचोलपुरम् में महिषासुरमर्दिनी की एक अन्य प्रतिमा का अंकन किया गया है जिसमें देवी की यह मूर्ति आधी नष्ट हो चुकी है। इस प्रतिमा में देवी की अठारह भुजाओं का अंकन किया गया है। यहां पर असुर को मानव रूप में दर्शाया गया है। देवी के गणों की आकृतियों को देवी के दोनों ओर खड़े दिखाया गया हैं। असुर देवी के दायें ओर खड़ा है। देवी के हाथों में त्रिशूल और शंख, तीर, तलवार और एक खोपड़ी है। देवी ने करंदा मुकुट धारण किया हुआ है। यहां पर देवी के वाहन शेर को भी प्रदर्शित गया है। असुर को मानव और भैंसे दोनों रूपों में अंकित किया गया है।

चित्र1 महिषासुरमर्दिनी, गंगैईकोण्डचोलपुरम्, ग्याहरवीं शती ई., चोल

महिषासुरमर्दिनी कात्यायनी रूप में:

देवी की इस प्रतिमा का अंकन गंगैइकोण्डचोलपुरम् में किया गया है। इस मूर्ति में देवी की दस भुजाओं का अंकन किया गया है। यहां पर देवी ने जो मुकुट पहना हुआ है उस पर चाँद अंकित है। मूर्ति में देवी के तीन नेत्र है। देवी के नेत्र लीली के फूल के समान है, देवी की छाती और कमर बड़ी है। देवी के शरीर को तीन जगह से मुड़ा हुआ प्रदर्शित किया गया है। देवी ने अपने दायें हाथों में त्रिशूल, खड्ग, चक्र और धनुष पकड़ा हुआ है। बायें हाथों में अंकुश, कटक, परशु, पासा और एक घण्टी है। देवी का पैर कटे हुए सिर वाले भैंसे पर रखा हुआ है। देवी ने असुर को नाग-पाश के द्वारा बांधा हुआ है। असुर ने तलवार और कवच पकड़ा हुआ है। यद्यपि देवी ने असुर की गर्दन को त्रिशूल के द्वारा भेदा हुआ है। देवी का दायां पैर शेर की पीठ पर रखा हुआ है जबकि बायां पैर महिषासुर के भैंसे रूपी शरीर को स्पर्श कर रहा है।

चोल काल की राजधानी तंजौर से दुर्गा की यह प्रतिमा प्राप्त हुई है। इस मूर्ति में देवी को बैठा हुआ दर्शाया गया है। यहाँ पर असुर की दो आकृतियां है जिसमें से एक असुर को पीठिका के सामने दर्शाया गया है जबकि दूसरी असुर आकृति में असुर को देवी के बायें पैर के द्वारा कुचला हुआ दिखाया गया है। इस मूर्ति में देवी की अष्टभुजाओं का अंकन किया गया है। देवी ने शंख और चक्र पकड़े हुए है। देवी की आभूषणों से सजावट और छाती की पट्टी का कार्य प्रशंसनीय है। इस कृति का नौवीं शती

www.ignited.in

ई० में तिः अलंदुरै महादेव मंदिर (किलोप्लु:) में अंकन किया गया है।

दुर्गाः

पुराणों में इस देवी को प्रायः दुर्गम दैत्य का वध करने के कारण दुर्गा कहा गया है। इस देवी की स्तुतियां विभिन्न पुराणों में मिलती है। शक्ति से सम्बन्धित विवरण मार्कण्डेय पुराण के देवी-माहात्म्य में उपलब्ध है।

दुर्गा को महिषासुर के सिर पर खड़ी मुद्रा में अंकित किया गया है। यहां पर देवी को अष्ट भुजाओं को दर्शाया गया है। देवी ने ऊपर के दायें हाथ में त्रिशूल और अन्य हाथों में खड्ग, धनुष, बाण आदि आयुद्ध पकड़े हुए है।

कुम्भकोणम् में दुर्गा को त्रिभंगा मुद्रा में खड़े दर्शाया गया है। देवी के हाथों में अनेक आयुद्ध है। यहां पर देवी के वाहन शेर का भी अंकन किया गया है। दुर्गा को असुर के भैंसे रूपी सिर पर खड़े हुए दिखाया गया है। शेर और मृग जिनके सींग नहीं है इनकी ऊपर उड़ती हुई आकृतियां दर्शायी गई है। दो भक्त गणों की आकृतियां घुटनों के बल पर देवी के सामने बैठे हुए अंकित किए गए हैं।

चित्र 2 दुर्गा, बुरकलयन संग्रहालय (कांस्य), दसवीं शती ई., चोल

सरस्वतीः

सरस्वती का वाग्देवी रूप ब्राह्मणों में अधिक स्पष्ट है। सरस्वती का वर्णन समृद्धिदात्री देवी के रूप में मिलता है। सरस्वती के इसी रूप का विकास आगे चलकर उपनिषदों में भी किया गया है, जहाँ सरस्वती सभी अभीष्ट वस्तुओं को दुग्ध रूप में प्रदान करने वाली कामधेनु के तुल्य आनन्ददायक तथा अन्न और शक्ति की प्रदाता वाग्देवी के रूप में वर्णित हैं। ये अज्ञानियों में ज्ञान को उद्दीप्त करती हुई ब्रह्म-विद्या को धारण करने वाली ब्रह्म-स्वरूपा है, जो भक्तों के जिहा पर वास करती है। ये काव्य की अधिष्ठात्री है, जिनसे कवित्व, योग, निर्भयता और मोक्ष की कामना की गयी है। सरस्वती के वाग्देवी रूप का उल्लेख गृह्यसूत्रों में भी मिलता है।

पद्मासीन सरस्वती की वीरासन मुद्रा में उपस्थित एक चोलकालीन द्विभुजी मूर्ति तंजौर के बृहदीश्वर मंदिर की उत्तरी दीवार पर निर्मित है। देवी का दायां हाथ टूटा हुआ है किन्तु बायें हाथ में एक पुस्तक है। इस मूर्ति की विशिष्टता सर्वअलंकृत देवी के रूप में है। इसके साथ एक वृक्ष का अंकन किया गया है जिसे प्रज्ञावृक्ष का प्रतीक माना गया है। यह मूर्ति ज्ञान और स्थित-प्रज्ञ अवस्था का मूर्त रूप जान पड़ती है

इस मूर्ति में सरस्वती को सफेद कमल पुष्प के ऊपर विरासन मुद्रा में बैठे हुए दर्शाया गया है। देवी के तीन हाथों को अंकित किया गया है जिसमें से एक में अक्षमाला, एक में जल का पात्र और ताड़ के पत्ते की पुस्तक ली हुई है। देवी का चैथा हाथ अभय मुद्रा में है। इस समय यह प्रतिमा तंजौर की ऑर्ट गैलरी में है।

यहाँ पर सरस्वती को कमल पुष्प पर बैठे हुए दिखाया गया है। देवी के ऊपर वाले हाथों में एक माला और ताड़ के पत्तों की पुस्तक को अंकित किया गया है। नीचे के दायें हाथ में शस्त्र है, जबकि नीचे का बायां हाथ अभय मुद्रा में अंकित है । इस प्रतिमा में देवी को मोतियों की माला और मुकुट धारण किए हुए प्रदर्शित किया गया है।

चित्र 3 महासरस्वती, बृहदीश्वर मंदिर, ग्याहरवीं शती ई., चोल

पार्वतीः

हिन्दू-देव-परिवार में शिव-पत्नी पार्वती का स्थान महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन साहित्य में इन्हें उमा, आर्या, गौरी, शिवा, भवानी,

रूद्राणी आदि नामों से संबोधित किया गया है। केन उपनिषद् में श्उमा हैमवतीश् नाम से देवताओं को ब्रह्मज्ञान प्रदान करने वाली देवी के रूप में वर्णित है। इस काल में यद्यपि अम्बिका भी रूद्र से पत्नी-रूप में संबंध है तथापि श्हैमवतीश् उपाधि का प्रयोग केवल उमा के लिया हुआ है न कि अम्बिका के लिए। उमा और उनके विशेषण हैमवती से कालान्तर में मान्य शिव-पत्नी उमा का बोध होता है, जो हिमवान की पुत्री है।

तंजौर से प्राप्त पार्वती की मूर्ति में कलाकार ने भावों को पूरी स्वाभाविता से प्रस्तुत किया है। पार्वती की मूर्तियों में सुन्दरता भाव के साथ ही शरीर की कोमलता भी पूरी तरह जीवन्त रूप में दिखाई गई है। इकहरे शरीर वाली पार्वती का मुख गोल है और हाथों तथा पैरों की मुद्राएं मूर्ति की गतिशीलता को व्यक्त करती है। सिर का लम्बा मुकुट, गले और शरीर के अन्य आभूषण तथा वस्त्र पूरी तरह देवी के शरीर में समाहित दिखाई देते हैं। यह मूर्ति चोल धातु शिल्प का एक जीवन्त उदाहरण है। इस को लगभग दसवीं शती ई. की कृति निर्धारित किया गया है।

दसवीं शती ई. की इस प्रतिमा में पार्वती को बहुत लम्बी दर्शाया गया है। देवी के लहरदार वस्त्रों का अंकन किया गया है जो ऐसे प्रतीत होती है कि जैसे धोती पहनी हुई है। देवी आभूषणों से अलंकृत है। कोबरे के सिर की आकृति पार्वती के सिर के पीछे अंकित की गयी है। देवी की यह प्रतिमा कांस्य (धातु) द्वारा निर्मित है।

उमा की मूर्ति का अंकन कमल पुष्प की पीठिका पर खड़ी मुद्रा में किया गया है। यहां पर देवी को दायीं ओर झुका हुआ दर्शाया गया है और शरीर का भार बायीं ओर है। मूर्ति के नीचे वाले भाग में वस्त्रों को दिखाया गया है जो घुटने तक है। उमा को पहनाया गया छनवीरा शरीर को सुशोभित कर रहा है। देवी को हार पहने हुए प्रदर्शित किया गया है जो उसकी गर्दन को सुशोभित कर रहा है। दायां हाथ कटक मुद्रा में है। नाक को ऊपर से टूटा हुआ दिखाया गया है। दसवीं शती ई. में इस प्रतिमा का उकेरन परिवमरुतिश्वर मंदिर (तिरूथुरई पुन्दी, तंजौर) में किया गया है।

सप्तमातृकाएः

ऋग्वेद में वर्णित अग्नि की सात जिह्वाओं को विद्वानों ने सप्तमातृकाओं का पूर्वरूप माना है। इस वेद के कुछ मन्त्रों में अग्नि से संबंधित दस मातृकाओं48 तथा सोमरस बनाने के सन्दर्भ में सात मातृकाओं49 की चर्चा की गई है। वाजसनेयी संहिता में अग्नि के लिए सात गर्भ धारण करने वाली मातृकाओं का वर्णन किया गया है। इस प्रकार सात मातृकाओं का मूल ऋग्वेद में पूर्वोक्त उदाहरणों में निहित है।

नौवीं शती ई. में मेलाप्पलुर मंदिर में मातृकाओं की इस प्रतिमा में सभी देवियों को शस्त्र पकड़े हुए दिखाया गया है। महेश्वरी ने ऊपर के हाथ में मृग के स्थान पर माला ली हुई है जबकि अन्य हाथों में शस्त्र पकड़े हुए हैं। कुमारी ने कुण्डिका और घण्टा पकड़ा हुआ है। वाराही ने परशु और चक्र लिए हुए हैं। पूरी प्रतिमा में महेश्वरी ऐसी देवी है जिसने माला नहीं ली हुई है और वह क्रोधित मुद्रा में है।

इस प्रतिमा में पाँच मातृकाओं को दर्शाया गया है जो पुष्पावनेश्वर मंदिर (तिरूपुतुरूतति, तंजौर) में अंकित है। सभी देवियों को अर्धपर्यकासन मुद्रा में अलग-अलग दर्शाया गया है। सभी देवियों चतुर्भुजी हैं जो समान मुद्रा में अंकित की गई है। नीचे का दायां हाथ अभय मुद्रा में है और यहां पर बच्चों का अंकन नहीं किया गया है। नीचे के बायें हाथ बायीं पट पर आराम मुद्रा में दर्शाये गये हैं। यहाँ पर किसी भी देवी के वाहन को नहीं दिखाया गया है। ब्राह्मणी के तीन सिर है। ऊपर के दायें और बायें हाथों में देवी ने कमण्डल और अक्षमाला क्रमानुसार पकड़ी हुई है। महेश्वरी ने जटामुकुट धारण किया हुआ है। देवी ने परशु और एक मृग ऊपर और नीचे के हाथों में लिए हुए है। वैष्णवी ने चक्र और शंख ऊपर और नीचे के हाथों में पकड़े हुए है। वैष्णवी ने चक्र और शंख ऊपर के दायें और बायें हाथों में पकड़े हुए हैं। वाराही का सिर सुअर जैसा दर्शाया गया है। पाँचवी देवी शायद कुमारी है जिसने अक्षमाला और एक वस्तु अपने ऊपर वाले हाथ बायें और दायें हाथ में पकड़ी हुई है जो स्पष्ट नहीं हैं।

पूर्वी चोल काल में दसवीं शती में देवी महेश्वरी की प्रतिमा का अंकन किया गया है। महेश्वरी की एक अन्य प्रतिमा का वर्णन तंजौर में किया गया है जो राजकीय संग्रहालय, मद्रास में है। ये दोनों प्रतिमाएं धातु का महत्त्वपूर्ण उदाहरण है।

अध्ययन के उद्देश्य

1. चोल कला की मूर्तियाँ एवं शिलाजटिल आलेखन का अध्ययन।

2. चोल कला की विभिन्न देवी-देवताओं, प्रतिमाओं का अंकन कुशलता का अध्ययन।

उपसंहार

भारतीय कला का एक विशिष्ट तत्व प्रतीकात्मकता है। इसमें कुछ प्रतीकों के माध्यम से अत्यन्त गूढ़ दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचारों को व्यक्त कर दिया गया है। चोल वंश दक्षिणी भारत के इतिहास में सबसे लंबे समय तक राज करने वाले राजवंशों में से एक था, जिसमें कल्पना, आदर्श, प्राचीन परम्पराएँ और सृजनशीलता मिली हुई है। इन राजवंशों के

www.ignited.in

शासकों ने अपने-अपने साम्राज्य में कला को प्रमुखता दी थी। उन्होंने अपनी कलाओं में नारी के स्थान को ज्यादा महत्त्वपूर्ण माना है तथा उनकी धार्मिक मूर्तियों का अंकन मंदिरों की दीवारों और स्तम्भों पर देवी प्रतिमाओं के रूप में किया है,उन्होंने लंबे समय तक चलने वाले पत्थर के मंदिरों और उत्तम कांस्य की मूर्तियों के निर्माण में अपने व्यापक विजय के माध्यम से अर्जित अपनी विलक्षण संपत्ति का उपयोग किया। चोल कला और वास्तुकला पर पल्लवों और अन्य समकालीन कला और वास्तुकला स्कूलों का प्रभाव था, जिससे उन्हें द्रविड़ रूप को और अधिक ऊंचाइयों तक ले जाने में मदद मिली।

संदर्भ

1. स्कन्द पुराण, वेंकटेश्वर स्टीम प्रैस, बम्बई, 1967
2. शतपथ ब्राह्मण, रत्नकुमारी पब्लिकेशन सीरिज-7, दिल्ली, 1969
3. उपाध्याय, भगवतशरण, भारतीय कला एवं संस्कृति की भूमिका, नई दिल्ली, 1991
4. उपाध्याय, उद्यनारायण, तिवारी, गौतम, भारतीय स्थापत्य एवं कला, दिल्ली, 2006
5. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान, वाराणसी, 1982
6. कादरी, एम. एस. ए. ए., प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं कलाएं, प्रकीर्ण खण्ड कुमार,
7. डॉ. अशोक -देव, डॉ. नरेन्द्र, राष्ट्रकूट साम्राज्य का इतिहास, वाराणसी, 2012
8. खान, एम. ए., भारतीय कला और विरासत, दिल्ली, 2011
9. गुप्ते, आर. के., प्राचीन भारत में समाज, धर्म, कला एवं वास्तुकला, जयपुर, 2004
10. गांगुली, मंजूषा, कला इतिहास, भोपाल, 1997
11. गुप्ते, डॉ. नत्थूलाल, संस्कृति के सात सोपान, नई दिल्ली, 2011
12. गुप्ते, डॉ. रामेश्वर, हमारी संस्कृति, 1958

Corresponding Author

Vishal Pandey*

Research Scholar, Shri Venkateshwara University, Gajraula, Amroha